स्वामी विवेकानन्द की शिवभक्ति

स्वामी विवेकानन्द इस युग के परम ज्ञानी आचार्य थे और उनके जीवनचरित का विहंगावलोकन करने पर यह देखने में आता है कि उनके जीवन का प्रारम्भ ही शिवकृपा से हुआ। युवावस्था में उन्हें शिव से ही कर्म की प्रेरणा मिली और अन्त में शिवानुभूति के साथ ही उनके जीवन का पटाक्षेप हुआ। उनके पिता विश्वनाथ दत्त कलकत्ता के एक सुप्रसिद्ध वकील थे। माता भुवनेश्वरी देवी को कई संतानें हुईं, परंतु उनमें से कइयों का शैशवकाल में ही निधन हो गया, बच रही थीं तो केवल पुत्रियाँ। पुत्र-प्राप्ति के लिये उनकी माता प्रतिदिन अपने आराध्य देवाधिदेव महादेव की पूजा, ध्यान-प्रार्थना तथा व्रत आदि में निरत रहने लगीं। काशी में निवास करनेवाली अपने परिवार की एक वृद्धा को भी उन्होंने वहाँ के वीरेश्वर शिव के मन्दिर में इस निमित्त पूजा, दान आदि की व्यवस्था करने का अनुरोध किया। तदनुसार वे वृद्ध महिला भी वाराणसी में शिव की अर्चना करने लगीं।

भगवान् शिव की कृपा से एक दिन उन्हें पुत्र-प्राप्ति का पूर्वाभास मिला। उस दिन वे पूजा, प्रार्थना आदि से निवृत्त होकर रात में शयन कर रही थीं, सहसा उन्होंने देखा कि जटाजूटमण्डित, ज्योतिर्मय, तुषारधवल महादेव उनके सामने स्थित हैं और क्षण में ही देवाधिदेव महादेव ने एक नन्हें से शिशु का रूप धारण कर लिया। उस रजतगिरि के समान सुकुमार शिशु का दर्शन करते ही उनकी नींद खुल गयी। उनका मन एक अपूर्व आनन्द से भर गया। वे सोचने लगीं कि यह मात्र एक स्वप्न था या फिर भावी का पूर्वाभास।

इस अलौकिक स्वप्न के कुछ महीनों बाद ही 12 जनवरी, 1863ई० मकर-संक्रान्ति के दिन उन्हें पुत्ररत्न की प्राप्ति हुई। वीरेश्वर शिव की आराधना के फलस्वरूप ही जन्म होने के कारण माँ ने उस शिशुको 'वीरेश्वर' नाम दिया और दुलार में उसे 'बिले' कहकर सम्बोधित करने लगीं। स्कूल में उनका नाम हुआ नरेन्द्रनाथ दत्त और परवर्ती काल में स्वामी विवेकानन्द के रूप में विख्यात हुए। बचपन की क्रीडाओं में जब 'बिले' किसी प्रकार न मानते तो माँ उन्हें 'शिव'-'शिव' इस प्रकार पुकारती तो वे शान्त हो जाते। फिर कुछ बड़े होने पर माता के ही परामर्श से 'बिले' शिवजी की मूर्ति पाकर उनकी पूजा-अर्चना तथा ध्यान करने लगे। बालक बिले गेरुए वस्त्र का एक टुकड़ा कौपीन की भाँति कमर में खोंसकर घर में घूम रहे थे, यह देखकर माँ ने कहा- 'यह क्या है रे!' बिले ने जोर की आवाज में उल्लासपूर्वक कहा- 'माँ! मैं शिव बन गया हूँ।'

धीरे-धीरे वे बढ़ते गये। युवावस्था में उनके मन में कभी-कभी यह प्रश्न उठने लगा कि क्या वास्तव में ईश्वर का अस्तित्व है और क्या उनका दर्शन भी किया जा सकता है? इस प्रश्न को लेकर वे दक्षिणेश्वर पहुँचे और इसका समाधान पाकर उन्होंने पूर्णत: शिव-भक्ति की सत्ता को स्वीकार कर लिया।

अपने गुरुदेव श्रीरामकृष्णजी की महासमाधि के पश्चात् वे कलकत्ता के ही वराहनगर अञ्चल में एक मठ बनाकर अपने गुरुभाईयों के साथ उसमें निवास करने लगे। वहाँ श्रीरामकृष्ण के अस्थि-अवशेष तथा पट की स्थापना कर उन लोगों ने एक देवालय बनाया था। संध्या को आरती के समय वे लोग एक साथ मिलकर यह पद गाया करते थे-

जय शिव ओंकारा भज शिव ओंकारा।
ब्रह्मा विष्णु सदाशिव हर हर हर महादेव।।

स्वामीजी ने शिवजी पर भजनों की रचना भी की थी, जिनमें से एक[1] इस प्रकार है-

ताथैया ताथैया नाचे भोला, बम बम बाजे गाल।
डिमि डिमि डिमि डमरु बाजे, दुलिछे कपाल माल।।
गरजे गंगा जटा माझे, उगरे अनल त्रिशूल राजे।
धक धक धक मौलिबन्ध, ज्वले शशांक भाल।।

इस भजन को गाते समय स्वामीजी अपने गुरुभाईयों के साथ मिलकर नृत्य भी करते थे।

कुछ वर्षों के मठ-जीवन के दौरान उन्होंने कई बार वाराणसी तथा वैद्यनाथधाम आदि स्थानों में जाकर तपस्या की। तत्पश्चात् वे परिव्राजक के रूप में पश्चिमी भारत की यात्रा पर निकले। रामेश्वरम् पहुँचकर महादेव का दर्शन करना भी उन्होंने अपना लक्ष्य बना रखा था, ऐसा उनके कई पत्रों से ज्ञात होता है।

स्वामीजी ने विश्ववासियों को समझाया कि हिन्दू लोग सभी धर्मों को सत्य तथा ईश्वरतक पहुँचने का एक-एक पथ मानते हैं। शिकागो धर्ममहासभा के समक्ष हिन्दूधर्म का परिचय देते हुए उन्होंने **'शिवमहिम्नःस्तोत्र'** का निम्नलिखित श्लोक उद्धृत किया था[2]-

रुचीनां वैचित्र्यादृजुकुटिलनानापथजुषां
नृणामेको गम्यस्त्वमसि पयसामर्णव इव।। (श्लोक सं. 7)

अर्थात् 'जैसे विभिन्न नदियाँ एक ही समुद्र में पहुँच जाती हैं, उसी प्रकार रुचिवैचित्र्य के अनुसार सीधे अथवा टेढ़े-मेढ़े मार्गों से आनेवाले सभी लोग, हे प्रभो! अन्ततः तुम्हीं में आकर मिल जाते हैं।'

विदेश-यात्रा से लौटकर जब वे पुनः रामेश्वरम् शिव का दर्शन करने आये तो अपने एक व्याख्यान में स्वामीजी ने कहा था- '..... प्रत्येक प्राणी के हृदय में शिव का वास है, परंतु उस पर एक आवरण सा पड़ा हुआ है। अभावग्रस्त लोगों की सेवा के द्वारा जब तुम्हारा चित्त शुद्ध हो

1. 'द कम्पलीट वर्क्स ऑफ़ स्वामी विवेकानन्द' वाल्यूम 8, पृ. 171, इसी पृष्ठ पर एक अन्य भजन भी दिया गया है।
2. वही, वाल्यूम 3 पृष्ठ 114 - 115

जायगा, तो शिवजी स्वयं ही प्रकट होंगे। जो व्यक्ति जितना ही निःस्वार्थ है, वह शिवजी के उतना ही समीप है।' 'शिवभाव से जीवसेवा' यही स्वामीजी के संदेश का केन्द्रबिन्दु है।[1]

उन्होंने उत्तरी भारत, हिमालय और विशेषकर अमरनाथ आदि शैव क्षेत्रों की पावन यात्रा भी की। हिमालय के दर्शन कर उनका मन शिवजी के भाव में विभोर रहा करता था। महादेव के प्रति उनमें असीम प्रेम था। उनका कहना था कि 'महादेव शान्त, सुन्दर तथा मौन हैं और मैं उनका भक्त हूँ।' वे श्वेतकाय हिममण्डित हिमालय की पर्वत-श्रेणियों को शिव और उनके ऊपर पड़नेवाले आलोक को जगदम्बारूप में बताते थे। इस प्रकार सम्पूर्ण हिमालय ही स्वामीजी के लिये मानो महादेव की एक जीवन्त प्रतिमा थी।

यहाँ हम संक्षेप में स्वामी विवेकानन्द के शिव-संबंधी कुछ विचारों की चर्चा करेंगे। वैसे तो उनकी सभी बातें शास्त्र सम्मत ही हैं परन्तु उनको व्यक्त करने का उनका अपना विशेष तरीका है।

ईश्वर तर्कातीत है तथा उसका ज्ञान केवल आध्यात्मिक अनुभुति से ही हो सकता है। इस तथ्य को स्वामीजी एक कथा के माध्यम से समझाते हैं। एक बार विभिन्न सम्प्रदायों के विद्वान् एकत्र हो विवाद करने लगे। एक कहता कि शिव ही सबसे बड़ा ईश्वर है, दूसरा कहता कि विष्णु ही बड़ा ईश्वर है और इसी प्रकार अन्य लोगों ने किसी और-और को ईश्वर बताया। इतने में कोई संत वहाँ से गुजरे। विवाद करनेवालों ने उन्हें फैसला करने के लिये निवेदन किया। तब संत ने उस व्यक्ति से पूछा, जो शिव को सबसे बड़ा ईश्वर बता रहा था, कि 'क्या तुमने शिव को देखा है? क्या तुम उसे जानते हो? क्या तुम उससे परिचित हो'? अगर ऐसा नहीं है तो तुम कैसे जानते हो कि वह सबसे बड़ा ईश्वर है। इसी प्रकार का प्रश्न विष्णु को श्रेष्ठ बतानेवाले से पूछा। अन्त में पता चला कि न तो शिव को और न ही विष्णु को अथवा अन्य को बड़ा बतानेवालों को उनके देवों का अनुभव है। अगर उन्हें अपने इष्टों के अनुभव हुए होते तो इस प्रकार के विवाद की कोई संभावना ही नहीं होती। जब हमें किसी के बारे में ज्ञान होता है तो उसके बारे में विवाद ही नहीं उठता। विवाद वहीं उठता है जहाँ हम अज्ञान में होते हैं। जो मन, बुद्धि, तर्क आदि से परे है उसके बारे में इस तरह के प्रश्न खड़ा करना कि अमुक बड़ा है निरर्थक है। वास्तव में एक ही तत्त्व नाना रूपों में भक्तों की रुचियों के अनुसार अपने को प्रकट करता हैं।(द कम्पलीट वर्क्स ऑफ़ स्वामी विवेकानन्द, वाल्यूम 2, पृ. 43-44)

जिस प्रकार नाना नदियाँ विभिन्न पर्वतों से निकलती हैं तथा घूमते-घामते अन्त में वे समुद्र में पहुँचती हैं, उसी प्रकार सभी प्रकार के साधक अपने-अपने रास्ते से चलते हुए अन्त में उस एक भगवान्तक पहुँच जायँगे। अतः हमारी शिवभक्ति, विवेकानन्द के अनुसार, पूर्ण तभी मानी जायगी

1 वही, वाल्यूम 3 पृष्ठ 141-143, इन 3 पृष्ठों के भाषण के बीच में अन्य कई बातें भी उन्होंने कही हैं। वे सभी बातें शास्त्रसम्मत ही हैं। जैसे तीर्थ में पाप करने से पाप काफी गुना हो जाता है। शिव प्रेम एवं भक्ति से प्रसन्न होते हैं केवल दिखावे से नहीं। शिव निष्काम कर्म या सेवा से प्राप्त होते हैं।

जब हम उसे न केवल लिंग में अपितु सर्वत्र देखने लगेंगे।

शिवलिंगपूजा के स्वरूप एवं उद्‌गम संबंधी पाश्चात्य विद्वानों के विचारों का खण्डन करते हुए कहते हैं कि लिंग-पूजा अथर्ववेद-संहिता के यज्ञ के यूपस्तम्भ संबंधी स्तुति से विकसित हुई है। उस स्तुति में उस स्तम्भ को अनादि, अनन्त एवं शाश्वत ब्रह्म का(प्रतीकात्मक) स्वरूप स्वीकार किया गया है। इसी यूप स्तंभ से लिंगपूजा का विकास हुआ। यह लिंग उसी शाश्वत ब्रह्म का प्रतीक है। लिंगपूजा को विदेशी विद्वान् शिश्नपूजा मानते हैं। इसका जवाब देते हुए उन्होंने इसे ब्रह्म की प्रतीक पूजा माना तथा कहा कि बौद्धों के पतन के बाद जब उसमें घृणित तान्त्रिक तत्त्व घुस आये, जिनका प्रचार नेपाल तथा तिब्बत में था, तब लिंगपूजा को शिश्नपूजा जैसी वस्तु माना जाता था(वही, वाल्यूम 4, पृ. 424-425)। एक स्थल पर स्वामीजी कहते हैं कि इस बात को नहीं भूलना चाहिये कि हम जिस ईश्वर की पूजा करते हैं वे पूर्णरूप से विरक्त, योगी, संन्यासी तथा सर्वत्यागी शंकर हैं, जो उमापति हैं।(वही, वाल्यूम 4, पृ. 480)

वे कहते हैं कि जो निःस्वार्थ है, ज्यादा आध्यात्मिक पुरुष है तथा वह शिव के नजदीक है, वह चाहे विद्वान् हो या मूर्ख। अगर कोई स्वार्थी है तो वह चाहे जितना मन्दिर में जाय तथा तीर्थ कर ले, परन्तु वह शिव से काफी दूर होता है।(वही, वाल्यूम 3, पृ. 143)

अमरनाथ तीर्थ की यात्रा के बाद उन्होंने बताया कि अमरनाथ से उन्हें इच्छा-मृत्यु का वर मिला है। इस दर्शन का प्रभाव उनपर इतना गम्भीर हुआ था कि वे उन दिनों सर्वदा शिवजी के भाव में ही विभोर रहते तथा उनके मुख से उन्हीं की महिमा का गान होता रहता था।[1]

पाश्चात्य देशों से लौटने के बाद फरवरी 1902 ई० में स्वामीजी ने अन्तिम बार वाराणसी की यात्रा की। वहाँ प्रतिदिन स्वामीजी विश्वनाथ तथा अन्नपूर्णा के दर्शन को जाया करते थे। स्वामीजी ने छः श्लोकों में एक अत्यन्त मनोरम 'शिवस्तोत्र' की रचना की है।(द कम्पलीट वर्क्स ऑफ़ स्वामी विवेकानन्द, वाल्यूम 4, पृ. 501-504 । इन पृष्ठों पर 6 श्लोकोंवाला शिवस्तोत्र दिया गया है जिसकी रचना स्वामीजी ने की थी।)शिव के भजन उन्हें अत्यन्त प्रिय थे। उन्हीं के द्वारा रचित एक शिवस्तुति के साथ इस प्रकरण को पूर्ण किया जा रहा है -

हर हर हर भूतनाथ पशुपति
योगेश्वर महादेव शिव पिनाकपाणि।
ऊर्ध्व ज्वलत जटा-जाल, नाचत व्योमकेश भाल,
सप्तभुवन धरत ताल, टलमल अवनी।।

(यह लेख गीताप्रेस, गोरखपुर, द्वारा प्रकाशित शिवोपासनांक तथा द कम्पलीट वर्क्स ऑफ़ स्वामी विवेकानन्द जो अद्वैत आश्रम कलकत्ता से जनवरी 1989 में छपा है, पर आधारित है।)

❁❁❁❁❁❁

1. द कम्पलीट वर्क्स ऑफ़ स्वामी विवेकानन्द, वाल्यूम 7, पृ 129